



Since
March 2002

A National,
Registered & Refereed
Monthly Journal :

Drawing

Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 42-43

ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■

Impact Factor - 2015 - 2.782

मिथला की लोककला मधुबनी और उसका विकासशील महत्व

प्रस्तुत शोधपत्र में मिथला की लोककला मधुबनी और उसके विकासशील महत्व का अध्ययन किया गया है। मधुबनी चित्रकला अपने मूलरूप में कला का वह रूप है, जिसकी उत्पत्ति क्षेत्र की महिलाओं द्वारा की गई है। इस विधा में सभी जातियों की महिलाएँ सम्मिलित रही हैं। इस देश की महिलाओं ने पुरातन काल से स्वयं को विभिन्न प्रकार की सृजनात्मक गतिविधियों से जोड़े रखा है। इसका श्रेष्ठतम उदाहरण प्रकृति संस्कृति एवं मनुष्य के मन के बीच सम्बंधों में देखा जा सकता है। इस सृजनात्मकता में उन्हीं मूल तत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो उसके आसपास के क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

डॉ.(श्रीमती) वीणा चौबे

लोक कला का जन्म मानव जीवन के साथ ही हुआ है। ऐसा माना जाता है कि लोक कलाएँ मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं, जो प्राचीन काल से ही मानव की सहचरी के रूप हमेशा ही साथ रही है। लोक शब्द जाति, धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय, नगर, ग्राम, शिक्षित, अशिक्षित, धनी, निर्धन के भेद से ऊपर उठकर व्यवहार करती है। कला व्यक्ति स्वतन्त्रता से आधुनिक कही जाने वाली वर्गीय दृष्टि का निषेध करती है।

भारत देश की अनेकता के समान ही भारत की लोक कला ने भी इस देश की संस्कृति पच्चीकारी को भी बड़े विस्तृत केनवास पर चित्रित किया है और इसका एक रूप मिथला की चित्रकारी में देखने को मिलता है, जो यहाँ के कलाकारों की कल्पना शक्ति के रूप में दिखाई देता है। मधुबनी चित्रकला की मूल भावना वेदों एवं पुराणों से प्राप्त है। मधुबनी के भिन्नी विभिन्न धार्मिक संस्कारों में उपयोग किये जाते हैं एवं यह चित्र विवाह समारोह के महत्वपूर्ण भाग होते हैं। साथ ही पर्व और त्योहारों पर भी इस लोककला की एक विशेषता तंत्र पर भी आधारित है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की स्त्रियों तक चलती है। राम, सीता, राधा, कृष्णा एवं शिव-पार्वती की रचना तथा सूर्य, चन्द्र, जीवन की श्रेष्ठता के प्रतीक माने जाते हैं। कहीं मछली भी उन्नती की प्रतीक मानी जाती है। इनके साथ मधुबनी की चित्राकृतियों में पशु तथा पक्षी, मानव कृतियों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक रूप से चित्रित किये जाते हैं। पशुओं में मुख्यतः गाय, हाथी, घोड़ा, बैल, हिरण, शेर आदि चित्रित किये जाते हैं। इनमें गाय तथा हाथी का चित्रण प्रमुखता से किया जाता है। बिन्दु, रेखा, फूल, पत्ती आदि को इनके शरीर पर अंकित किया जाता है। हाथी को धन-धान्य एवं सम्पत्ति का प्रतीक माना गया है। उसके अतिरिक्त कछुआ तथा मछली को भी प्रमुखता से चित्रित किया जाता है। पक्षियों में चकोर, मोर, तोता, चिड़िया इत्यादि को चित्रित किया जाता है।

मधुबनी में आकृतियाँ निश्चित स्थान व अनुपात में नहीं होती हैं, किन्तु लोककला के रूप में स्त्री रूप कृतियाँ समान दिखाई देती हैं। उनकी वेशभूषा में स्त्री-पुरुष का रूप परिलक्षित होता है। अदि कांश मुखकृतियों के चेहरे के प्रभाव शून्य होते हैं। वस्त्रों को विभिन्न रंगों की आकृति से सजाया जाता है। रंगों के साथ कोई भी आकृति ऐसी नहीं होती है, जिसमें फल-फूल वनस्पति का अंकन नहीं किया गया हो। कमल के फूल तथा गुलाब को प्रमुखता से बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त चित्राकृतियों को फूल-पत्तियों से व फलों से लदी बेलबूटों के रूप में बनाया जाता है। पृष्ठभूमि तथा हाशियों को भी वनस्पति व बेल-बूटों से ही सजाया जाता है। ये चित्र सामान्यतः गहरे लाल, हरे, नीले, काले, हलके पीले, गुलाबी बंसती अथवा चौसठ या चावल आटा आदि होते हैं। यही रंग कार्य की लय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए ऊर्जा को जोड़ने वाली शक्ति लाल एवं सफेद रंगों में एवं हरीतिमा प्राकृतिक पत्तियों एवं वनस्पति से सर्वथा उपयुक्त प्रदर्शित होते हैं।

विभिन्न जाति समुदाय के लोग अपनी रुचि के अनुसार चित्रों का चयन करते हैं, जैसे ब्राह्मण चटक नीले रंग को वरीयता प्रदान करते हैं तथा कायस्थ मंद रंगों को चुनते हैं। हरिजन रोली के चित्रों में हस्त निर्मित कागज को गाय के गोबर से लीपते हैं, तत्पश्चात् उसे निर्मित कर रंग भरते हैं। प्रारम्भ में घरों में ही रंग निर्मित करके प्राकृतिक रंग पौधों से प्राप्त किए जाते थे। जैसे मेहन्दी की पत्तियाँ, फूल, बोगन बैलियाँ, नीम आदि। इन प्राकृतिक रंगों को केले से प्राप्त टाल रंजिन एवं समान्य गोंद के साथ मिलाया जाता है, जिससे चित्र बनाने की सतह पर रंग आसानी से चिपक सके और स्थिर रहे। काला रंग मिट्टी के तेल के लेम्प से एकत्रित हुए धुएँ को गोंद में मिलाकर बनाया जाता है। इसी तरह जली हुई ज्वार (अनाज) की राख को बैल फल से निकाली गई गोंद के साथ गाय का गोबर मिलाकर काला रंग बनाया जाता है।

विभागाध्यक्ष (चित्रकला विभाग), अटल बिहारी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)

हरा रंग सुंवे के पेड़ की पत्तियों से तथा बेल वृक्ष की पत्तियों से बनाया जाता है। लाल रंग का माध्यम रोगन, सिंदूर, लाख, इत्यादि का उपयोग किया जाता है। पीला रंग चूना व हल्दी को वट वृक्ष की पत्तियों के धुएँ में मिलाकर बनाया जाता था। सफेद रंग को चावल के आटे से तैयार किया जाता है, इससे यह स्पष्ट है कि मधुबनी या मैथिली के लोग पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर होते थे।

मधुबनी चित्रकला अपने मूलरूप में कला का वह रूप है, जिसकी उत्पत्ति क्षेत्र की महिलाओं द्वारा की गई है। इस विधा में सभी जातियों की महिलाएँ सम्मिलित रही हैं। इस देश की महिलाओं ने पुरातन काल से स्वयं को विभिन्न प्रकार की सृजनात्मक गतिविधियों से जोड़े रखा है। इसका श्रेष्ठतम उदाहरण प्रकृति संस्कृति एवं मनुष्य के मन के बीच सम्बंधों में देखा जा सकता है। इस सृजनात्मकता में उन्हीं मूल तत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो उसके आसपास के क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

भारतीय चित्र परम्परा में राजस्थान की चित्रकला के इतिहास को एक स्वर्णिम इतिहास के रूप में जाना जाता रहा है। राजस्थान की कला में भारत की चित्र परम्परा में राजारानी चित्रण से एक व्यवस्थित और सौन्दर्यपूर्ण कलामय इतिहास सौंपा है, जिसकी चमक विश्वभर में दिखाई देती है और भारत की कला को सौन्दर्यपूर्ण कला वैभव के ऊँचे मंच पर विराजित करती है। राजस्थानी चित्र परम्परा में मध्यमकालीन लघुचित्रण परम्परा में मेवाड़ की लघु-चित्रण परम्परा को वहाँ के चित्रकारों ने राग-रागिनियों के रूप में प्रदर्शित किया है। शास्त्रीय और लोक नियमों के आधार पर बड़ी ही एकाग्रता एवं भावुकता से लघुचित्र परम्परा का निर्वहन करते हुए चित्रित किया है और सैद्धांतिक तर्कों को रेखा व रंगों के द्वारा दृश्य रूप में सृजित कर संसार को अचम्भित कर दिया है।

मानव जीवन में जितनी भी कलाएँ हैं, वे सभी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। कला का मूल सौन्दर्यभाव रस है। इसका उत्तिकृष्ट उदाहरण राजस्थान के मेवाड़ की लघुचित्र परम्परा है। जो चित्रकला की अद्भुत मिसाल है। यहाँ के चित्रकारों ने बड़े ही मनोयोग से योग रेखाओं में रस के समावेश के साथ रूपाकार को रूपांकित किया है। मेवाड़ शैली का सर्वप्रथम उजला रूप 1540 के विल्हणकृत चौर पंचाशिका ग्रन्थ के लघुचित्रों में देखने को मिलता है। इसी क्रम में अहाड़ में 1592 में डोलामारु ग्रन्थ राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। मेवाड़ की चित्रकला का अगला उदाहरण चावड़ में निसादी द्वारा चित्रित रागमाला जो 1605 की है। इसी शैली में बनी एक अन्य रागमाला चित्र रागनी गूजरी 1609 बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है। ऐसे ही मेवाड़ के गिलुण्ड में एक सचित्र ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इसी तरह और भी राग रागिनी चित्रणों में नायिका भेद, रसिक प्रिया, इत्यादि नामों से लघु चित्रण की जानकारी प्राप्त है। इस लघु चित्रण शैली का सबसे अधिक विकास महाराजा जगत सिंह प्रथम के काल में हुआ। इनके नाम हैं – रागमाला, गीत गोविन्द, रसिक प्रिया, सूरसागर, दूसरी रसिक, प्रिया कुमार, सम्भव रसमंजरी, कविप्रिया, तीसरी रसिक प्रिया, आर्षरामायण, (अ) बालकाण्ड (ब) अयोध्या काण्ड, (स) अरण्य काण्ड (द) युद्ध (फ) किर्षिकन्धा काण्ड इत्यादि के बाद जगत सिंह के पुत्र राजसिंह ने भी लघु चित्रण शैली की परम्परा को बनाये रखते हुए शूकरक्षेत्र महात्मा, भृमरजीत, महाभारत, गीत गोविन्द इस तरह मेवाड़ के राजाओं ने अनेक भक्तिकालीन व

रीतिकालीन काव्य ग्रन्थों से प्रेरित विषयों पर स्वतंत्र ग्रन्थ चित्रों का चित्रण किया है। महाराजा संग्राम सिंह भी इस कला के पारखी रहे हैं। उनके शासन काल में एक चित्ररावणी जगन्नाथ अपनी प्रसिद्धी पर था और वह कवि भी था। अतः इसके द्वारा बिहारी सतसई व सुन्दर शृंगार जैसे ग्रन्थ लिखे व चित्रित किए गए। इसी समय में मुगल प्रभाव भी चित्रण पर हावी था, जिसके फलस्वरूप जगत सिंह द्वितीय के समय मुल्लाह दो प्याजा, पृथ्वीराज रासो, मालती माधव, गजेन्द्र मोक्ष जैसे ग्रन्थों को चित्रित करवाया।

रागरागिनी चित्रण करने के लिए चित्रकारों ने प्रमुख 6 रागों व पाँच रागिनीयों को मूलरूप से सृजित किया है, जो इस प्रकार हैं – राग माकंस, राग दीपक, राज श्री, रागमेघ। इसके साथ ही चित्रकारों ने बड़े ही संयम और लगन के साथ प्रतीकों का आश्रय लेकर शृंगार रस को दृश्यमान किया है। शृंगार के दो भेद हैं – (1) संयोग शृंगार एवं (2) वियोग शृंगार। रागमाल में सर्वाधिक चित्रण वियोग शृंगार भाव पर हुआ है। इस भाव के अन्दर प्रणय, संदेश की प्रतीक्षा, पति की सुरक्षित लौटने की कामना करती हुई, शिव की आराधना में लीन यद्यपि रागमाला चित्रों में वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति अधिक रूचिकर लगी, वहीं संयोग शृंगार के अंकन को भी निश्चल रूप से किया है, जैसे नृत्य कर पति को रिझाती, प्रणय पर्व की तैयारी पुनर्मिलन, उषा काल की तैयारी इत्यादि संयोग शृंगार में परिलक्षित होता है।

चित्रकारों ने इन राग-रागिनीयों के विविध भावों को रमणीय रंग संयोजन से दृश्य प्रस्तुत किये हैं। भारतीय लघुचित्रों में राग रागिनी की कल्पना नायक एवं नायिका के रूप में की गयी है। इस समय वैष्णव धर्म अपने पूरे यौवन पर था। श्री कृष्ण तो जितने जन मानस के प्रिय रहे, उतने ही द्वितीय शासकों के लिए भी रहे हैं। अतः इस समय काव्य, संगीत व चित्रकला में नायक के रूप में श्री कृष्ण व नायिका के रूप में राधा सर्वाधिक चित्रित हुई, जो शृंगार भाव और सौन्दर्य रस की पूर्ण रूपेण काव्य की आत्मा है और इन राग-रागिनियों के चित्रण में इन सौन्दर्य रस से भरे काव्यों को ही चित्रकारों ने शृंगार रूप में चित्रित किया है।

भारतीय चित्रकला में भाव को विशिष्ट महत्व दिया है और राग रागिनियों के कलाकारों ने भावों व प्रदर्शन में रेखाओं और रंगों का प्रतीक रूप में आश्रय लेकर विषय को भावग्राही बनाया है। चित्रकारों ने भावों को मूर्त रूप देने के लिए प्रकृति के विविध रूपाकारों को मूर्त रूप देने में प्रकृति के विविध रूपाकारों को संयोजित कर विषय वस्तु को स्पष्ट करने में रंगों और रेखाओं द्वारा कोमलतम भवनाओं का प्रयोग किया है।

भारतीय लघुचित्र शैली में चित्रकारों ने राग-रागिनियों के प्रदर्शन में परम्परागत शास्त्रीय एवं लोक नियमों के आधार पर विविध आश्रयों का लेकर बड़ी ही एकाग्रता से चित्रण किया है। इसीलिए कहा गया है की मेवाड़ शैली राजस्थानी चित्रकला की अमर धरोहर है। राजस्थान के जन-जीवन तथा सामंती जीवन का जीता-जागता स्वरूप मेवाड़ शैली में परिलक्षित होता है।

संदर्भ :

- (1) अग्रवाल, गिरीराज किशोर : कला और कलम।
- (2) अग्रवाल, गिरीराज किशोर : रूपंकर, अलीगढ़, द्वितीय संस्करण।
- (3) अग्रवाल, आर. ए. : भारतीय चित्रकला का विवेचना।
- (4) अग्रवाल, आर. ए. : कला विलास।

